शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255, (e): 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com/* https://doi.org/10.31995/shodhmanthan

वैदिक साहित्य में वर्णित कृषि व्यवस्था का विवेचन

प्रो0 राकेश कुमार शर्मा
प्रा0भा0इ0स0 एवम् पुरातत्त्व विभाग,
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रशान्त कुमार
शोध छात्र, प्रा0भा0इ0स0 एवम् पुरातत्त्व विभाग,
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Email: prashantmba@rediffmail.com

सारांश

कृषि और सभ्यता का परस्पर गहरा संबंध इतिहास से प्रमाणित होता है। कृषि के विकास की कथा मानव सभ्यता के इतिहास से अनन्य रूप में जुड़ी है। भारत में कृषि का महत्व प्राचीन काल से आज तक बना रहा है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात हो जाता है कि आर्यों के आर्थिक जीवन में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान था। कृषि से प्राप्त अन्न ही आजीविका का मुख्य साधन माना जाता था।

प्रस्तावना

वैदिक काल में कृषि का महत्व ऋग्वेद के इस उल्लेख से स्पष्ट है जिसमें ऋषि कवष ऐलूष द्यूत कर्म की निन्दा करते हुए जुएं में आसक्त मानव से कहते हैं कि तुम जुएं के पासो से मत खेलो अपितु खेती करो, उससे जो वित्त प्राप्त हो उसे ही बहुत मानकर उसका भोग करो। उसी कर्म से तुम्हारी गाएँ और तुम्हारी पत्नी सुखी रहेंगी।[1] कृषि कार्य को महत्व देने के कारण ही वेदों में स्थान–स्थान पर देवताओं से वर्षा और नादियों से भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए प्रार्थनाएँ मिलती हैं। ऋग्वेद में एक अन्य स्थान पर कृषि कार्य के महत्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इससे सम्मान एवं समृद्धि की प्राप्ति होती है।[2] अथर्ववेद का यह कथन कि भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ[3], से स्पष्ट है कि वैदिक जन कृषि को अर्थव्यवस्था का आधार मानते हुए भूमि को सौभाग्य प्रदान करने वाली माता के समान देखते थे। यजुर्वेद में भी कृषि के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि कृषि का महान स्थान भूमि है।[4] अन्य स्थान पर कहा गया है कि हे भूमि माता तुझे नमन हो। हम कृषि के लिए तुझे स्वीकार करते हैं। अपनी रक्षा के लिए तुझे ग्रहण करते हैं। ऐश्वर्य के लिए तुझे हम चाहते हैं और तुझे अपने पोषण के लिए माता के समान वंदनीय समझते है[5] , क्योंकि परमात्मा ने हमें ऐश्वर्य और कृषि के लिए उत्पन्न किया है।[6] अन्यत्र भी कहा गया है कि कृषि के द्वारा हम लोगों को संसार के सब ऐश्वर्य प्राप्त हो।[7]

कृषि की दृष्टि से भूमि का यथोचित विभाजन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वास्तव में पूरे कृषि कर्म की सफलता ही भूमि के समुचित चयन पर निर्भर करती है। वेदों मे कृषि की दृष्टि से भूमि के दो भागों का वर्णन मिलता है। ये हैं–(1) कृष्टपच्य (2) अकृष्टपच्य। यजुर्वेद में कृषि के

द्वारा उत्पन्न अन्न के लिए 'कृष्टपच्या' तथा बिना कृषि किये उत्पन्न अन्न के लिए 'अकृष्टपच्या' शब्द का प्रयोग किया गया है।[8] अथर्ववेद में भी कृषि योग्य भूमि को कृष्य कहा गया है।[9] संहिताओं में भूमि के दोनों प्रकारों का उल्लेख मिलता है।[10] इन दो प्रमुख विभाजनों के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में कृषि भूमि के तीन अन्य प्रकारों का भी उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में भूमि के तीन प्रमुख भेद हैं[11] –

(1) **आर्तना–** मैकडॉनल एवं कीथ के अनुसार ऋग्वेद में यह बंजर भूमि का द्योतक है।[12] वैदिक कोश के अनुसार ऋग्वेद में इसका आशय ऊसर क्षेत्रों से है।[13] शतपथ ब्राह्मण में इस भूमि को अकृष्ट कहा गया है।[14]

(2) **अप्नस्वती–** वैदिक इण्डेक्स तथा वैदिक कोश के अनुसार ऋग्वेद में यह शब्द उर्वर भूमि का बोधक है।[15] शतपथ ब्राह्मण में इस भूमि को कृष्ट कहा गया है।[16]

(3) **उर्वरा अथवा क्षेत्र–** यह भूमि कृषि की दृष्टि से सबसे अधिक उपयुक्त थी। ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं मे उपजाऊ भूमि के लिए उर्वरा[17] तथा खेत के लिए क्षेत्र[18] शब्द मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी कृषित भूमि को क्षेत्र अथवा उर्वरा कहा गया है।[19] आर0 एस0 शर्मा के अनुसार यहाँ क्षेत्र शब्द जुते हुए खेतों का और उर्वरा से अभिप्राय उपजाऊ खेतों से हैं उनके अनुसार उर्वरा शब्द जलोढ मिट्टी वाली भूमि का द्योतक भी हो सकता है।[20]

इस काल में खेतों की नाप भी होती थी खेत बिल्कुल एक चकला नहीं होता था बल्कि उन्हें नाप जोखकर अलग–अलग टुकड़ों में बाँट दिया जाता था जो विभिन्न कृषकों की जोत में आते थे। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि तेजन (फीता, रस्सी, सरकण्डे की छडी या मापदण्ड) से खेत को मापा जाता था।[21] इस काल में खेतों की माप की ईकाई क्या थी, इसका उल्लेख किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता। इस विषय में हमें सर्वप्रथम जानकारी पाणिनि अष्टाध्यायी, धर्मसूत्रों एवं बौद्ध साहित्य से प्राप्त होती है। वेदों में कृषि–कर्म के सबसे महत्वपूर्ण तथा उपयोगी उपकरण के रूप में सर्वप्रथम हल का उल्लेख मिलता है। सामान्यतः कृषि कार्य का प्रारम्भ भू–कर्षण से ही माना जाता है जो वैदिक काल में हल एवं बैलों की सहायता से सम्पन्न होता था।[22] सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में हल के लिए साधारणतः तीन नाम सीर[23], सील[24], एवं लांगल[25] प्रयुक्त हुए है। एम0 एस0 रंधावा के अनुसार इसमें लांगल तीक्ष्ण नोक तथा चिकनी मूठ वाला होता था जबकि सीर बडा और भारी हल था।[26] सूर्यकान्त के अनुसार भी सीर काफी बड़ा और भारी होता था, क्योंकि इसमें अनेक बैल जुड़ते थे।[27] ऋग्वेद के एक मंत्र में मेधावी लोगों द्वारा हल चलाने का उल्लेख मिलता है।[28] एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि अश्विन देवताओं ने मनु को बीज बोने की कला का ज्ञान दिया तथा आर्यों को हल की सहायता से खेती करना सिखाया।[29] अथर्ववेद में एक स्थान पर इन्द्र को सीरपति (हल का स्वामी) कहा गया है।[30] यजुर्वेद तथा शतपथ ब्राह्मण में भी मेधावी (विद्वान कवि) लोगों द्वारा हल चलाने का उल्लेख मिलता है।[31]

इस काल में हल प्रायः लकड़ी[32] के बनते थे जिनमें बहुत अधिक संख्या में बैल जोते जाते थे यद्यपि सामान्यतया हल चलाने के लिए दो बैल[33] प्रयोग में लाये जाते थे, पर इस काल में ऐसे भारी हल भी बनाये जाने लगे थे जिन्हें खींचने के लिए छः[34] आठ[35], बारह[36], तथा चौबीस[37]

बैलों तक की आवष्कता पड़ती थी। जिससे हलों के प्रायः विशाल और भारी होने का अनुमान होता है। एन0 सी0 बंधोपाध्याय के अनुसार इतने अधिक बैलों का प्रयोग गहरी जुताई अथवा कठोर भूमि को जोतने में किया जाता होगा।[38] आर0 एस0 शर्मा के अनुसार भी कठोर भूमि जोतने के लिए ही दो से अधिक बैलों का प्रयोग किया जाता था।[39] ए0 के0 यज्ञनारायण अय्यर के अनुसार सम्भवतः इस काल के हल आधुनिक हलों की भांति अंग्रेजी वर्ण 'V' के आकार के होते थे।[40] हल के अगले नुकीले भाग को जो भूमि में प्रविश्ट होकर मिट्टी खोदता था, फाल कहा जाता था।[41] यह प्रायः नुकीला तथा तीक्ष्ण धार वाला होता था। फाल लकड़ी अथवा धातु के बनते थे। लकड़ियों में अधिकांशतः खादिर (खैर) एवं उदुम्बर (गुलर) की लकड़ी के फाल बनते थे जो काफी सख्त होती थी। ऋग्वेद[42] में बिल्व तथा उदुम्बर को फलदाय की मान्यता प्राप्त थी। अथर्ववेद में खादिर के हल के फाल से गाय, बकरियाँ सन्तान एवं अनाज प्रदान करने के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं।[43] इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सतजल और व्यास नदियों के बीच के दोआब क्षेत्र में 1940 ई0 तक लकड़ी के फाल वाले हल प्रयुक्त होते थे। आर0 एस0 शर्मा के अनुसार बनारस के क्षेत्र में आज भी एक अनुष्ठान के अन्तर्गत जोतने की प्रक्रिया को प्रारम्भ करने से पूर्व लकड़ी के फाल से युक्त हल से एक छोटे खेत में रेखाएँ अंकित की जाती है।[44]

हल के अतिरिक्त कृषि के अन्य महत्त्वपूर्ण औजारों का वर्णन इस काल के साहित्य में मिलता है। भूमि खोदने के लिए खनित्र (बेलचा, कुदाल, फावडा या खुरपा) का प्रयोग किया जाता था।[45] फसलों के पक जाने पर उसे दात्र[46] (हंसिया) या सृणि[47] से काटा जाता था। इसके अतिरिक्त अनाज को भूसे से पृथक करने हेतु वैदिक काल में दो प्रमुख साधन थे–1. शूर्प[48] या छाज, 2. तितउ[49] या छलनी। यहाँ पर शूर्प अन्न ओसने के लिए प्रयुक्त एक बिनी हुई टोकरी का द्योतक है जिसकी सहायता से भूसा उड़ाकर अन्न को अलग किया जाता था।

वैदिक कालीन कृषक कृषि की विभिन्न प्रक्रियाओं से भलीभांति परिचित थे। शतपथ ब्राह्मण[50] में कृषि की इन विधियों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। ये क्रियाएँ क्रमशः कृषन्तः (जोतना), वपन्तः (बोना) लुनन्तः (काटना) और मृणन्तः (माड़ना) हैं। कृषि क्रियाओं द्वारा अन्न उत्पन्न करने के लिए कृषक भूमि पर जो प्रथम क्रिया करता है वह भू–कर्षण अथवा जुताई कहलाती है। भूमि की जुताई के बिना अन्नोत्पादन नहीं किया जा सकता है। उत्तम अन्न की प्राप्ति के लिए भूमि को जोतकर उसे कृषि कर्म के योग्य बनाना आवश्यक है। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि किसान हलों से खेतों की अच्छी प्रकार जुताई करते हैं और उसके बाद बुआई करते हैं।[51] अन्य स्थान पर कहा गया है कि कृषिकर्म में कुशल जन खेतों को निरन्तर जोतकर एवं बीज बोकर अन्न एवं धनों को पाते हैं।[52] एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि किसान हर एक अन्न की सिद्धि के लिए खेतों को बारम्बार जोतता है।[53] यहाँ हर एक अन्न के लिए खेतों को बारम्बार जोतना इस बात को दर्षाता है कि किसान खेत की अच्छी तरह से तैयारी करने के पश्चात ही बीज की बुआई करते थे। अथर्ववेद में महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले स्वर्ण निर्मित हल के फाल के ताबीज (मणि) का उल्लेख मिलता है।[54] स्त्रियाँ उपर्युक्त ताबीज पहनकर प्रार्थनाएँ करती थी कि जिस प्रकार हल के फाल से जुती हुई भूमि में डाला गया बीज उगता और बढ़ता है उसी

प्रकार मेरे आधार से सन्तान, पशु और अन्न उत्पन्न हो।[55] शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर बुआई करने से पहले खेत की विधिवत् रूप से जुताई करने का उल्लेख मिलता है।[56] दूसरे स्थान कहा गया है कि पर हल के फाल शुभ रीति से भूमि को जोतें और शुभ रीति से कृषक लोग बैलों को चलावें।[57]

आज की भाँति वैदिक काल में भूमि की जुताई के लिए हल–बैलों का प्रयोग होता था। अच्छे उत्पादन के लिए भूमि को गहरा जोता जाता था। हल में जोते जाने वाले आठ से चौबीस बैलों तक के उल्लेख का आशय भी कुछ विद्वानों ने भूमि की गहरी जुताई से ही किया है। हल चलाने वाले को 'कीनाश' कहते थे।[58] हल चलाने से भूमि में जो गहरी लकीरें बनती थी उसे सीता (हलाई) कहा जाता था।[59] खेतों की अच्छी तरह से जुताई करने के पश्चात् इसमें खाद डाली जाती थी। खाद के लिए करीश, शकन् तथा शकृत आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था।[60] यह खाद प्रायः गाय या बैल के गोबर की होती थी। तत्पश्चात् अच्छी तरह से तैयार खेत में बीज बोया जाता था।

वैदिक साहित्य में बोने के लिए 'वपन'[61], 'वपत्'[62], 'वपन्त्'[63] तथा बोने वाले के लिए 'वप'[64] आदि शब्द प्रयोग में आये हैं। ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि अच्छी तरह से तैयार किए गए खेत में ही बीज बोना चाहिए जिससे कि भरपूर अन्न पैदा हो।[65] साथ ही अक्षित बीज[66] के उल्लेख से प्रतीत होता है कि बीज बोने से पहले इस बात का भी ध्यान रखा जाता था कि बीज अच्छी किस्म का हो तथा कीड़े आदि के द्वारा खाया गया न हो।[67] यजुर्वेद में **'कृते योनौ वपतेह बीजम्'** से स्पष्ट निर्देश है कि भू–परिष्कार के बाद ही बीज बोना चाहिए।[68] अथर्ववेद के अनुसार भी अच्छी तरह से जुताई किए जाने के पश्चात् ही उसमें बीज बोना चाहिए।[69] आधुनिक कृषकों की भांति वैदिक कृषकों को भी विभिन्न फसलों के बोने तथा काटने के समय की जानकारी हो गयी थी। इस सम्बन्ध में हमें सबसे महत्वपूर्ण सूचना तैत्तिरीय संहिता से प्राप्त होती है। इस संहिता में अन्नों के कटने की भिन्न–भिन्न ऋतुओं का वर्णन मिलता है जिससे इनके बोने का समय भी जाना जा सकता है। इसके अनुसार यव (जौ) ग्रीष्म ऋतु में कटता है तो वह वर्शा में बोया जाता होगा। माश (उड़द) और तिल (तिलहन) हेमन्त और शिशिर में कटते हैं तो वे ग्रीष्म ऋतु की वर्षा में बोये जाते होगें। वर्षा ऋतु में कटने वाले कुछ अन्नों (औषधि) का भी उल्लेख मिलता है। शरद में कटने वाली फसलों में ब्रीहि (धान) मुख्य है।[70] इस प्रकार वर्ष में चार फसलों के कटने का वर्णन है। वर्तमान समय में ग्रीष्म तथा शरद में कटने वाली फसलें क्रमशः रबी तथा खरीफ कहलाती है। तैत्तिरीय संहिता में ही एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि वर्ष में मुख्य रूप से दो फसलें (सस्य) होती है।[71] अतः इन्हें रबी तथा खरीफ की फसल ही समझना चाहिए। इस प्रकार तैत्तिरीय संहिता में बीज बोने का जो समय बताया गया है वह जलवायु में विशेष परिवर्तन न होने कारण बहुत कुछ आजकल के समान ही जान पड़ता है।

बीज बोने के बाद खेत की सिंचाई की जाती थी। वैदिक काल में कृषक कृषि कर्म की सफलता के लिए अधिकाशतः वर्षा के जल पर ही निर्भर थे। वेदों में अनेक स्थानों पर वर्षा के जल से सिंचाई करने के उल्लेख मिलते हैं।[72] अथर्ववेद में वर्षा जल को अत्युत्तम और शत वृष्णय

अर्थात् सौ गुणी शक्ति वाला बताया गया हैं।[73] शतपथ ब्राह्मण में पौंधे का जीवन वर्षा जल पर निर्भर बताया गया हैं।[74] वैदिक साहित्य में लगभग 31 नदियों के उल्लेख मिलते हैं जिनमे 25 नदियाँ ऋग्वेद में उल्लिखित हैं।[75] नदियों से ही नहरें (कुल्या) निकाली जाती थी। शतपथ ब्राह्मण में प्रतीची दिशा में प्रवाहित नदियों से भी सिंचाई सुविधा प्राप्त होने का प्रमाण मिलता हैं।[76] यजुर्वेद के अनुसार धान्यों का बोने के बाद विविध प्रकार की औषधि एवं खनिज द्रव्यों के जलों से सिंचित करना चाहिए।[77] यजुर्वेद[78] में भी सिंचाई के अनेक साधानों का उल्लेख मिलता हैं। ये हैं– स्त्रुत्त्य (नाला), पत्थ्य (पतली नालियों द्वारा पानी) काटय (पोखरों, तालाबों और नदियों से क्रमिक उत्तोलन द्वारा क्षेत्रों के लिए उठाया जाने वाला पानी), नीप्य (झरने के या नीचे की ओर बहने वाला पानी), कुल्या (नहर), नाले (नदी), वैशन्त (तालाब), सर (ताल), कूप्य (कुऍ का जल), आवटय (गड्ढों, पाखरों का जल), मेध्य (मेघ जल), वर्ष्य (वर्षा का जल) तथा अवर्ष्य (बिना वर्षा का जल) आदि। इस प्रकार उपर्युक्त विवरणों के आधार पर कहा जाता है कि वैदिक काल में आर्यों को सिंचाई के प्राकृतिक एवं कृत्रिम साधनों की पर्याप्त जानकारी हो गयी थी।

बुआई और सिंचाई के बाद फसलों की निराई की जाती थी। इसमें समय–समय पर पौधों के चतुर्दिक उगे अनावश्यक घास–मोथे आदि को साफ करते रहते थे, जिससे कि मिट्टी की पूरी उर्वरक शक्ति धान्यों को ही प्राप्त हों। इसके लिए प्रायः कुदाल जैसे तीक्ष्ण और नुकीले औजार का प्रयोग करते थे। आजकल इस क्रिया को खेती की निराई अथवा गुड़ाई कहा जाता हैं।

पौधों के पूर्ण बड़े हो जाने तथा फसलों के पक जाने के पश्चात् उनकी लवनी की जाती थी। शतपथ ब्राह्मण में इसके लिए लुनन्तः शब्द आया है।[79] भू–कर्षण तथा बीज–वपन की भांति कटाई के समय भी अनेक धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन किया जाता था। लवन के मुख्यतः दो तरीके थे, प्रथम तो कुछ फसल जैसे व्रीहि, माष आदि को जमीन के बराबर जड़ से काटा जाता था और दूसरे जो गेहूँ, ज्वार आदि फसलों की बालियाँ ही काटी जाती थी[80] तथा काण्ड आदि खेतों में ही खड़े रहते थे। आज भी पाश्चिमोत्तर भारत के कतिपय भागो में लवनी के दोनो तरीके प्रयोग में लाये जाते हैं। पकी हुई फसल को काटने के लिए दरांती (दात्र या सृणि) का प्रयोग किया जाता था। कटी हुई फसल को छोटे–छोटे गट्ठरों (पर्ष)[81] में बाँधकर खल भूमि (खलियान)[82] तक लाया जाता था।

धान्य को खल में संग्रहित करने के पश्चात् अन्न को काण्ड से अलग करने के लिए उसकी मणनी की जाती थी। शतपथ ब्राह्मण में माणने के लिए 'मृणन्त' शब्द आया है।[83] मणनी बहुधा फसल को पत्थर पर बार–बार पीटकर की जाती थी।[84] अथर्ववेद में एक स्थान पर अनाज को ओखली (उलूखन) में रखकर मूसल से कूटने का भी वर्णन मिलता है।[85] मणनी के पश्चात् तितउ को चलाकर[86] अथवा शूर्प से ओसकर[87] अर्थात् फटक–फटक कर तृण और भूसे से अनाज को अलग कर लिया जाता था। यह सम्भवतः निष्पाव क्रिया थी। अथर्ववेद में इसके लिए 'पवन' शब्द आया है।[88] मैकडॉनल एवं कीथ के अनुसार यह तृण से अन्न को अलग करने के लिए प्रयुक्त किसी यंत्र का द्योतक है। अतः इससे एक चलनी अथवा ओसने की टोकरी अर्थ हो सकता है।[89]

ओसने वाले को 'धान्यकृत' कहा जाता था।[90] ओसने के पश्चात् खालियान से उपज को अनस् (गाड़ी) में घर लाया जाता था जो प्रचुरता का प्रतीक माना जाता था।[91] अतः जो कृषक अनाज भरकर धान लाते थे वे समृद्ध माने जाते थे। घर पर अनाज को नापकर उसे सुरिक्षत रखने की व्यवस्था की जाती थी। नापने का कार्य उर्दर नामक पात्र से किया जाता था।[92] अनाज को नापने का उद्देश्य सम्भवतः कृषकों द्वारा उनके भिन्न–भिन्न खेतों मे पैदा हुए अन्न की मात्रा का अनुमान लगाना होता था। इससे उन्हें अपने सम्पूर्ण उत्पादन की जानकारी भी हो जाती थी। अन्नों को सुरक्षित रखने के लिए आज की भांति, उन दिनों भी अन्नागार बने होते थे, जिन्हें ऋग्वेद में 'स्थिवि' कहा गया है।[93]

वैदिक साहित्य में विविध अन्नों एवं फसलों का विवरण प्राप्त होता है। ऋग्वेद में अन्नों के रूप में हमें केवल यव और धान्य का ही उल्लेख मिलता हैं। ऋग्वेद में यव[94] शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ हैं। जहाँ यव के बोने, यव के पकने तथा वर्षा होने पर यव की फसल बहुत अच्छी होने का संकेत मिलता है। उत्तर वैदिक साहित्य में भी यव शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता हैं।[95] इस काल में आकर यव जौ का पर्याय बन जाता हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख मिलता हैं।[96] यव के साथ चावल भी वैदिक आर्यों का मुख्य खाद्यान्न था। जिसे अथर्ववेद में ब्रीहि के नाम से सम्बोधित किया गया है।[97] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्रीहि शरद ऋतु में कटता था।[98] ब्रीहि के अतिरिक्त अथर्ववेद में तंदुल[99] का भी उल्लेख मिलता है जो धान की एक दूसरी किस्म प्रतीत होती हैं। गेहूँ का उल्लेख यद्यपि ऋग्वेद में नहीं मिलता, लेकिन यजुर्वेद में यह अन्य अन्न सम्बन्धी नामों के साथ उल्लिखित है।[100] यजुर्वेद में ही गोधूम को 'गोधूमाः परिवापस्य रूपम्' अर्थात् कृषि का उत्तम फल कहा गया हैं।[101] शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है कि गेहूँ ही अन्न है।[102] इसके अतिरिक्त माश (उड़द), मूँग, मसूर, और चना, का उल्लेख भी वैदिक साहित्य मे मिलता है।[103] अन्नों तथा दालों के अतिरिक्त कुछ अन्य कृषि जन्य पदार्थों का भी उत्तर वैदिक काल में आर्यों को ज्ञान हो चुका था इसके अन्तर्गत इक्षु का विशेष स्थान है। इक्षु का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद[104] तथा बाद की संहिताओं[105] में मिलता है। इस काल में तिल की खेती भी प्रधान रूप से होती थी। यजुर्वेद में इसका उल्लेख मिलता है।[106]

इस प्रकार वैदिक साहित्य के अध्ययन से कृषि के संबंध में जो संकेत मिलते हैं उन्हें देखने पर यह नहीं लगता है कि तत्कालीन खेती के लिए अपनायी गई युक्तियाँ और बोई जाने वाली फसलें तथा किसानी की व्यापकता परवर्ती कालों से बहुत भिन्न थी। कृषि का बड़े पैमाने पर उपयोग नयें धान्यों की तलाश का मार्ग प्रशस्त करता हैं। इन सबका उपयोग अधिक सार्थक ढंग से करने के लिए वह कूटने, पीसने, पेरने, ढोने, संभालने, पकाने और संचित करने के यंत्रो, पात्रों और विधियों को विकसित करता है। कृषि के क्षेत्र में गोड़ाई, जोताई, कटाई, मड़ाई आदि के लिए विभिन्न उपकरणों का अविष्कार होता चलता हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक आर्य कृषि उपकरणों, उनके तकनीकी ज्ञान, कृषि की विभिन्न विधियों, सिंचाई के साधनो एवं विभिन्न कृषि

उत्पादों से भलीभांति परिचित थे। आधुनिक काल की हरित क्रांति से पूर्व सामान्यतया भारत की कषि इसी परम्परागत ज्ञान पर ही आधारित थी।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद, सुबोध भाश्य, पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला–पारडी, जिला–बलसाड़, गुजरात, 2000, 10/34/13
2. वही, 10/117/7
3. अथर्ववेद, सुबोध भाष्य, पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला–पारडी, जिला–बलसाड़, गुजरात, 1990, 12/1/12
4. यजुर्वेद, सुबोध भाष्य, पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला–पारडी, जिला–बलसाड़, गुजरात, 2010, 23/46
5. वही, 9/22
6. वही, 4/10
7. वही, 18/31
8. वही, 18/41
9. अथर्ववेद, 2/4/5
10. तैत्तिरीय संहिता, सम्पादक पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला–पारडी, जिला–बलसाड़, गुजरात, 1983, 4/7/5/1,2 तथा मैत्रायणी संहिता, सम्पादक पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला–पारडी, जिला–बलसाड़, गुजरात, 1983, 2/11/5, तथा काठक संहिता, सम्पादक पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला–पारडी, जिला–बलसाड़, गुजरात, 1983, 18/10
11. ऋग्वेद, 1/126/6
12. वैदिक इण्डेक्स, मैकडॉनल एवं कीथ (हिन्दी अनु0 रामकुमार राय) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1962, भाग–1, पष्ठ 111
13. वैदिक कोश, सूर्यकान्त, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस, 1963, पष्ठ 40
14. शतपथ ब्राह्मण, हिन्दी अनु0 पं0 गंगाप्रसाद उपाध्याय, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2010, 7/2/4/17
15. वैदिक इण्डेक्स, भाग–1, पष्ठ 111, तथा वैदिक कोश, पष्ठ 17
16. शतपथ ब्राह्मण, 7/2/4/17
17. ऋग्वेद, 1/127/6, 4/38/1, 5/33/4, 6/20/1 ,6/25/4
18. वही, 1/33/15, 1/100/18, 1/110/5, 3/31/5, 4/38/1
19. शतपथ ब्राह्मण, 1/4/1/16

20. शर्मा, रामशरण, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 57
21. ऋग्वेद, 1/110/5
22. वही, 1/23/15, 1/176/2
23. ऋग्वेद, 4/57/8, 10/101/3–4, अथर्व0, 6/30/1, 6/91/1, 8/9/16, तैत्ति0 सं0, 4/2/5/5, 1/8/7/1, काठ0सं0 15/2, 16/12, 21/14, मैत्रा0सं0 2/7/12, 2/22/4, शत0ब्रा0, 7/2/2/2, 4–5, 2/6/3/2
24. वैदिक इण्डेक्स, भाग–2, पष्ठ 499
25. ऋग्वेद, 4/57/8, 10/101/4, अथर्व0, 2/8/4, 3/17/3, 6, तैत्ति0 सं0, 4/2/5/6, 6/6/7/4, मैत्रा0सं0 2/7/12, काठ0सं0 16/12, शत0ब्रा0, 7/2/2/11
26. रंधावा, एम0 एस0, ए हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन इण्डिया, वाल्यूम–1, इण्डिया काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च, नई दिल्ली, 1980, पष्ठ 317
27. वैदिक कोश, पष्ठ 558
28. ऋग्वेद, 10/101/4
29. वही, 1/117/21
30. अथर्ववेद, 6/31/1
31. यजुर्वेद, 12/67, शत0ब्रा0, 7/2/2/4
32. गोपाल, राम, इण्डिया ऑफ वैदिक कल्पसूत्राज, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1980, पष्ठ 133–34
33. ऋग्वेद, 10/106/2, शतपथ ब्राह्मण, 3/3/4/11,
34. अथर्ववेद, 6/91/1, 8/9/16
35. वही, 6/91/1
36. तैत्तिरीय संहिता, 1/8/7/1, 5/2/5/2, शत0 ब्रा0, 7/2/2/6
37. काठक संहिता, 15/2, शत0 ब्रा0, 7/2/2/6
38. बंधोपाध्याय, एन0सी0, इकनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एंशियेण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1945, पष्ठ 128–29
39. शर्मा, आर0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 134
40. अय्यर, ए0के0 यज्ञनारायण, एग्रीकल्चर एण्ड एलाइड आर्टस, इन वैदिक इण्डिया, बैंगलोर, 1949, पष्ठ 14
41. ऋग्वेद, 4/57/8, 10/117/7, अथर्व0, 3/17/5, काठ0सं0, 12/7, 16/12, 19/1

42. ऋग्वेद, खिल सूक्त, 5/22/10,
43. अथर्ववेद, 10/6/23,
44. शर्मा, आर0एस0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 100
45. ऋग्वेद, 1/179/6
46. ऋग्वेद, 1/166/12, 8/67/10, 8/78/10, अथर्व0, 10/9/24
47. ऋग्वेद, 1/58/4, 4/20/5, 10/101/3
48. अथर्ववेद, 9/6/16, 10/9/26, 11/3/4, 12/3/19
49. ऋग्वेद, 10/71/2
50. शतपथ ब्राह्मण, 1/6/1/3
51. ऋग्वेद, 10/101/3
52. वही, 1/176/2
53. वही, 1/23/15
54. अथर्ववेद, 10/6/2
55. वही, 10/6/33
56. शतपथ ब्राह्मण, 3/3/4/11–12, 7/2/2/7, 7/2/4/16,
57. वही, 7/2/2/9–10
58. ऋग्वेद, 4/57/8, अथर्व0, 3/17/5, 4/11/10
59. ऋग्वेद, 4/57/6–7, अथर्व0 3/17/4,8,9 काठ0सं0 7/2/2/5, 7/2/3/3
60. ऋग्वेद, 1/161/10, अथर्व0, 3/14/3, 19/31/3
61. ऋग्वेद, 1/117/21, शत0 ब्रा0, 3/1/2/1
62. ऋग्वेद, 10/101/9, यजु0, 12/68, अथर्व0, 3/17/2
63. शतपथ ब्राह्मण, 1/6/1/3
64. वैदिक इण्डेक्स, भाग–2, पष्ठ 269
65. ऋग्वेद, 10/101/3
66. वही, 5/53/13
67. सिंह, भगवान, हड़प्पा सभ्यता, और वैदिक साहित्य, राधाकष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पष्ठ 98
68. यजुर्वेद, 12/68
69. अथर्ववेद, 3/17/5, 10/6/33
70. तैत्तिरीय संहिता, 7/2/10/2
71. वही, 5/1/7/3

72. ऋग्वेद, 7/101/1,2,5,6, यजु0, 16/38, अथर्व0, 4/15/1, 6/54/1
73. अथर्ववेद, 1/4/3, 1/6/4, 19/2/1
74. यजुर्वेद, 2/16
75. ऋग्वेद, 10/75/5–8
76. शतपथ ब्राह्मण, 1/3/1/24
77. यजुर्वेद, 1/21
78. वही, 16/37–38
79. षतपथ ब्राह्मण, 1/6/1/3
80. यजुर्वेद, 122/1
81. ऋग्वेद, 10/48/7
82. ऋग्वेद, 10/48/7, अथर्व0, 8/6/15, 11/3/9
83. शतपथ ब्राह्मण, 1/6/1/3
84. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, वेद में कषषि विद्या, स्वाध्याय मण्डल, औंध (जिला–सतारा), 1923, पष्ठ 29
85. अथर्ववेद, 9/6/14–15, 10/9/26, 12/3/13
86. ऋग्वेद, 10/71/2
87. अथर्ववेद, 9/6/16, 10/9/26, 11/3/4
88. वही, 4/34/2, 18/3/11
89. वैदिक इण्डेक्स, भाग–1, पष्ठ 577
90. ऋग्वेद, 10/14/13
91. शतपथ ब्राह्मण, 1/1/2/6
92. ऋग्वेद, 2/14/11
93. वही, 10/68/3
94. वही, 1/23/15, 1/53/2, 1/66/3, 1/94/11, 1/117/21, 1/135/18
95. यजुर्वेद, 5/26, 6/1, 18/12, 19/23, 23/30, अथर्व0, 2/8/3, 6/50/1,2
96. शतपथ ब्राह्मण, 1/2/3/7, 2/5/2/1, 3/6/1/10, 4/2/1/11
97. अथर्ववेद, 6/140/2, 8/2/18, 8/7/20
98. शतपथ ब्राह्मण, 11/2/7/32
99. अथर्ववेद, 3/12/18, 10/9/26
100. यजुर्वेद, 18/12
101. वही, 18/22

102. शतपथ ब्राह्मण, 5/2/1/13
103. यजुर्वेद, 18/12, तैत्ति0 सं0, 4/7/4/2, काठ0सं0, 18/9, मैत्रा0 सं0, 2/11/4
104. अथर्ववेद, 1/34/5, 12/2/54
105. मैत्रा0 सं0, 3/7/9, 3/15/1, तैत्ति0सं0, 7/3/16/1
106. यजुर्वेद, 18/12